वन्दे वाणी विनायकौ

डॉ. रामदेव साहू
प्रोफेसर (वेदविज्ञान)
विश्वगुरु दीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ ||

इस मंगल श्लोक में वाणी एवं विनायक की वन्दना की गयी है। वाणी वाग्देवता है। वैदिक देवताओं में वाक् का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वाक् सृष्टि का आधारभूत मूल तत्त्व है। 'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे' वेद का स्पष्ट उद्घोष है। विनायक को वेद में गणपति कहा है। गणपति वाक् का नियन्ता है, अतः वाक् का अस्तित्व गणपति पर तथा गणपति का अस्तित्व वाक् पर अवलम्बित है। ये दोनों तत्त्व परस्पर एक दूसरे पर अवलम्बित हैं । ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड दोनों की उत्पत्ति या सृष्टि में वाक् का स्थान ऊर्ध्व में तथा गणपति का स्थान अधोभाग में होता है। इस ऊर्ध्व एवं अधोभाग का निर्धारण वषट्कारमण्डल से किया जाता है।

वषट्कारमण्डल का ऊर्ध्वभाग जिसे सहस्र' भी कहा जाता है का मध्यबिन्दु इस वाक् का ब्रह्माण्डीय स्थान है तथा वषट्कारमण्डल का अधोभाग जिसे 'अक्ष' या 'नाभि' कहा जाता है, वह गणपति का ब्रह्माण्डीय स्थान है। वषट्कार मण्डल में अक्ष तुल्य अन्य अक्षों की संख्या एक सहस्र होती है, अतः वषट्कारमण्डल को ही सहस्राक्ष (इन्द्र) कहा जाता है। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में वाक् एवं विनायक ऊर्ध्व एवं अध: में स्थित होते हुए एक दूसरे का नियन्त्रण करते हुए ब्रह्माण्ड के अस्तित्व को शाश्वत बनाये रखते हैं, वैसे ही पिण्ड (जीवशरीर) में भी इनकी स्थिति समानान्तर होती है। पिण्ड में धड़रूपी वषट्कारमण्डल के ऊर्ध्वभाग कण्ठ में वाक् की स्थिति होती है तथा उसके अधोभाग नाभि में गणपति की स्थिति होती है। ये दोनों पिण्ड के मुख्य प्राण होते हैं।

कण्ठ में स्थित वाक् में वायु की प्रधानता होती है तथा ऋषिप्राण, देवप्राण, पितृप्राण गन्धर्व प्राण एवं पशुप्राण (सौर प्राण) के द्वारा वायु के कर्षण से यह वाक् रूपी प्राण पञ्च वायुओं के रूप में विभक्त होकर प्राण,

अपान, उदान समान एवं व्यान इन पाँच प्राणों के रूप में अवस्थित हो जाता है। पञ्च प्राणों की कर्षण क्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में पाँच उपप्राण भी पिण्ड में नाग, देवदत्त, कूर्म, कृकल एवं धनंजय के रूप में पिण्ड में ही स्थानापन्न हो जाते हैं। गणपति प्राण इन पाँचों प्राणों एवं उपप्राणों को नियन्त्रित कर वाक् को पिण्ड में स्थायित्व प्रदान करता है तथा वाक् के आधायक पञ्च प्राणों एवं उपप्राणों के स्थायित्व से पिण्ड भी आपेक्षिक स्थायित्व को प्राप्त करता है, अत: प्राणिशरीर की स्थिति वाक् एवं गणपति दोनों पर आधारित होने से पिण्डधारी जीव के लिए तथा विशेषरूप से बुद्धितत्त्व के समाश्रित मनुष्य के लिए इन दोनों की वन्दना करना वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय दोनों ही दृष्टियों से नितान्त औचित्यपूर्ण है।

उक्त श्लोक में वाक् (वाणी) एवं गणपति (विनायक) को क्रमश: वर्णों, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों एवं मंगलों का कर्त्ता बतलाया गया है। वाक् का सम्बन्ध वर्णों से होता है। वर्ण वे हैं, जिनसे वाक् के विशिष्ट उच्चारणीय रूपों का वरण अर्थात् चयन किया जाता है। पिण्ड (शरीर) में साकंज प्राणों से उच्चारण स्थान वाले विशिष्ट अंगों एवं उपाङ्गों की सृष्टि होती है। वे अंग एवं उपाङ्ग जब उस चयन किये गये वाक्-स्वरूप को ध्वनित करते हैं, तो उस उच्चरित वर्ण विशेष की श्रूयमाणता का अनुभव होता है।

वर्णों पर आधारित शब्दों एवं वाक्यों के प्रयोग से लोकव्यवहार की निष्पत्ति होती है। वर्णों की उत्पत्ति-प्रक्रिया में गणपति प्राण की भी भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि गणपति प्राण द्वारा वाक् के कर्षण एवं वाक् समाश्रित पञ्च प्राणों के प्रतिकर्षण से ही ध्वनि की उत्पत्ति होती है। यह ध्वनि नाभि से श्वास के साथ कण्ठ तक पहुँचती है, तभी वर्णोच्चारण सम्भव होता है। यदि कर्षण एवं प्रतिकर्षण की प्रक्रियाओं में से एक भी न हो तो प्राणी वर्णोच्चारण में अक्षम हो जाता है। अत: वाक् के साथ गणपति का सम्बन्ध उनके कर्तृत्व को स्पष्ट परिलक्षित करता है।

'अर्थसंघानां' पद में संघ शब्द ध्यातव्य है। वर्ण उच्चारणानुगत होने से एक ही प्रकार का होता है, किन्तु उस एक वर्ण के भी अनेक अर्थ होते हैं। अर्थज्ञान के अभाव में अज्ञानी जन को शाब्दबोध नहीं होने पर भ्रमवश वह कई जगह शब्दप्रयोग को मिथ्या समझ लेता है या उस पर आक्षेप करने लगता है, ऐसी मानवप्रवृत्ति भी वर्तमान ज्ञानहानि के युग में अपने पांव पसार रही है। गोस्वामी सन्त तुलसीदास जी ने इसी तथ्य का बोध कराने के लिए यहाँ संघ शब्द का प्रयोग किया है।

शाब्दबोध के हेतुक अर्थ की निष्पत्ति में भी वाक् एवं गणपति अर्थात् वाणी एवं विनायक का ही कर्तृत्व बतलाया है। इन दोनों तत्त्वों का सम्बन्ध मनस्, बुद्धि एवं चित्त इन तीनों अन्तःकरणों से नित्य बना रहता है। ऐसी स्थिति में वाक् मनस् एवं बुद्धि ये तीनों मिल कर वर्णोच्चारणाधारित शब्दों एवं वाक्यों के प्रयोग में प्राणी को सक्षम बनाते हैं। इसी प्रकार गणपति प्राण बुद्धि एवं चित्त ये तीनों मिल कर लोकव्यवहार के निष्पादन के निमित्त उनके अर्थ का अवधारण करते हैं। अर्थसंघों की ही गण संज्ञा है, अत: उनका रक्षक होने से गणपति का गणपतित्व सिद्ध होता है।

'रसानां' पद में रस का अनेकत्व विवक्षित हुआ है। सामान्यतया रस आनन्दमय तत्त्व ब्रह्म अथवा आत्मा का उपलक्षक है। 'रसो वै स: कह कर वेद ने इसका स्पष्ट उद्घोष किया है। यही ब्रह्म या आत्मा प्रत्येक प्राणी में स्थित होकर अपने अनेकत्व को व्यक्त कर रहा है। वाङ्मय पञ्च प्राणों (वाक्) एवं गणपति प्राण (विनायक) के साहचर्य से इस रस का साक्षात्कार योगीजन करते हैं।

साहित्यशास्त्रियों के अनुसार वाक् में ही अनेक रस निहित हैं, जो भावमूलक हैं। मन, बुद्धि एवं चित्त में उद्भूत होने वाले भाव वाक् के आश्रित हो कर इसका सृजन करते हैं, तथा भावों के वैविध्य से रसों का भी वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। गणपति प्राण वाक् का कर्षण करने के कारण मन, बुद्धि एवं चित्त को भी सहावस्थान के कारण आकृष्ट करता है, जिससे ये रसविशेष के प्रति केन्द्रित होते हैं तथा उसके परिणामस्वरूप एक तन्मयता की स्थिति बनती है, अतः वाणी एवं विनायक दोनों रसों के कर्त्ता कहे गये हैं।

'छन्दस्' शब्द का तात्पर्य है- वाक् का आच्छादन करने वाला तत्त्व | वर्ण, मात्रा, पद, यति, गति एवं लय छन्द के अंग हैं, जो सबके सब वागाश्रित होते हैं। इन वागाश्रित तत्त्वों का क्रियान्वयन एवं नियन्त्रण गणपति प्राण द्वारा ही होता है। ध्वनि एवं श्वास दोनों का उद्गम एवं प्रसार नाभि स्थान से ही ऊपर की ओर होता है। इस कार्य में गणपति प्राण अपान के ऊर्ध्व प्रसार का अवरोध करता है तथा व्यान के ऊर्ध्व प्रसार का उत्प्रेरण करता है जिसके परिणामस्वरूप परा वाक् क्रमशः पश्यन्ती एवं मध्यमा के स्तर से गुजर कर अन्त में वैखरी को प्राप्त कर लेती है। यही वाणी पुन: गणपति प्राण द्वारा किये जाने वाले कर्षण - विकर्षण से श्वास के साथ ध्वनि को व्यक्त करती है तथा छन्छ के उक्त सभी अंगों को सक्रिय बनाने में समर्थ होती है। छन्द वेद का पर्याय भी कहा गया है, क्योंकि वाक् एवं गणपति प्राण से ही आदि में ऊँकारात्मक वेदध्वनि की उत्पत्ति होती है।

पुनश्च गणपति प्राण से वाक् की सक्रियता के साथ ही गति उत्पन्न होती है। प्रत्येक क्रिया वस्तु की स्थिति एवं गति पर निर्भर होती है, जिसे यजु कहा गया है। इसके सन्निधान से ही स्पष्ट होता है कि गणपति प्राण वस्तु की स्थिति को बनाये रखता है तथा वाक् उसका विस्तार करती है। प्राणिशरीर की क्रियाओं के क्रियान्वयन में ये दोनों प्राण छन्दस्त्व को सार्थक करते हैं, अत: इन्हें छन्दों का भी कर्त्ता कहा गया है।

मंगल परम श्रेयस् है। इस रूप में पर ब्रह्म या आत्मा ही मंगल है, जो इस जीव का कल्याणकारक है। यह मंगल प्राणिशरीर में ही अवस्थित होता है तथा इसकी स्थिति भी वाक् एवं गणपति दोनों पर ही आश्रित है। प्राणिशरीर में गणपति प्राण जब तक सशक्त रहता है, तब तक वह निरन्तर वाक् को नियन्त्रित किये रहता है, जिससे पञ्च प्राणों के क्रियान्वयन में बाधा नहीं आती तथा प्राणी प्राणवान् बना रहता है।

प्राणी की इस प्राणवत्ता की स्थिति में वह मंगलस्वरूप आत्मा या ब्रह्म प्राणिशरीरस्थ पञ्च प्राणों से आबद्ध कर लिया जाता है अत: उसकी स्थिति समवाय सम्बन्ध का रूप ले लेती है तथा उनमें अन्योन्याश्रयता उपपन्न हो जाती है, जिससे प्राण एवं आत्मा में अभिन्नता की मिथ्या प्रतीति भी होती है, जिसे 'जीवात्मा' शब्द से भी व्यव हृत किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि न केवल प्राणी ही वाक् एवं गणपति पर आश्रित है, अपितु प्राणिशरीरस्थ आत्मा भी इन्हीं वाक् एवं गणपति के आश्रित है, अत: इन्हें मंगलों का भी कर्ता कहा गया है।